International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 7, July 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

राम कथा का मानव जीवन पर प्रभाव

डॉ अरविन्द कुमार
एसो. प्रो. एवं विभागाध्यक्ष , (हिंदी विभाग)
चौ. चरण सिंह पी.जी. कॉलेज, हेंवरा, इटावा (उत्तर प्रदेश)

सार

"रामचरितमानस""तुलसीदासजी"का सुदृढ़ कीर्ति स्तंभ है जिसके कारण वे संसार में श्रेष्ठ कवि के रूप में जाने जाते है, क्योंकि मानस का कथाशिल्प, काव्यरूप, अलंकार संयोजना, छंद नियोजना और उसका प्रयोगात्मक सौंदर्य, लोक–संस्कृति तथा जीवन–मूल्यों का मनोवैज्ञानिक पक्ष अपने श्रेष्ठ रूप में है।
तुलसी की रामोन्मुखता मानवता ही है। वे जब राम की भक्ति करते हैं तो अंतत इस लोक की ही भक्ति करते हैं। उनके राम स्वर्ग में विचरण करने वाले देवता नहीं हैं बल्कि समाज में रहने वाले राम हैं। तुलसी के राम आदर्श चरित्र के नायक हैं।

प्रस्तावना

राम का मानवीय व्यवहार सबको लुभाता है, आश्चर्य में डालता है। राम आदर्श भाई, आदर्श मित्र, आदर्श पति और आदर्श दुश्मन भी हैं। तुलसी की लोक–साधना ऊपर से देखने में भले ही भक्तिपरक लगती है, पर उनके भीतर के आदर्श समाज का सपना एक आदर्श मानव का चरित्र है। "वस्तुत तुलसी के राम वस्तुत एक हैं। वे ही निर्गुण और सगुण, निराकार और साकार, अव्यक्त और व्यक्त, अंतरयामी और बहिर्यामी, गुणातीत और गुणाश्रय हैं। निर्गुण राम ही भक्तों के प्रेमवश सगुण रूप में प्रकट होते हैं।[1]"

तुलसी ने द्वैतवादी और अद्वैतवादी मतों का समन्वय किया है। राम और जगत में तत्वत अभेद है, किंतु प्रतीयमान व्यावहारिक भेद भी है। तुलसी ने भेदवाद और अभेदवाद दोनों का समन्वय किया है। स्वरूप की

[1]"रामचरितमानस" (सटीक)–2–28–2य गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1999ई०।

दृष्टि से जीव और ईश्वर में अभेद है। यह ईश्वर का अंग है अत: ईश्वर की भांति ही सत्य, चेतन और आनंदमय है।

मुक्ति और भक्ति व्यक्तिगत वस्तुएं हैं। तुलसी का मुख्य प्रतिपाद्य भक्ति है, परंतु उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज के प्रति भी व्यक्ति के कुछ कर्तव्य हैं अतएव अपनी वृत्तियों के उदात्तीकरण के साथ ही उसे समाज का भी उन्नयन करना चाहिए। तुलसी के सभी पात्र इसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। व्यक्ति और समाज, आत्मपक्ष और लोकपक्ष के समन्वय द्वारा तुलसी ने धर्म की सर्वतोमुख रक्षा का प्रयास किया है।

"रामचरितमानस" तुलसी की उदारता, अंतरूकरण की विशालता एवं भारतीय चारित्रिक आदर्श की साकार प्रतिमा है। तुलसी ने राम के रूप में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की ऐसी आदर्शमयी ओर जीवंत प्रतिमा प्रतिष्ठित की है, जो विश्वभर में अलौकिक, असाधारण, अनुपम एवं अद्भुत है, जो धर्म एवं नैतिकता की दृष्टि से सर्वोपरि है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्री रामकथा केवल भक्तिमार्ग के साधकों का भाव ही पुष्ट नही करती, वरन उनकाआध्यात्मिक, सामाजिक तथा व्यवाहरिक जीवन का मार्गदर्शन भी करती है। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्री "रामचरितमानस"एक सम्पूर्ण व्यावहारिक जीवन दर्शन को समेटे हुए एक ऐसा ग्रन्थ है जिसने हम संसारी जीवों के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन के विभिन्न अंगों के लिए आदर्श स्थापित किया है।

"श्री रामकथा"में निरूपित जीवन–व्यवस्था एक आदर्श समाज एवं आदर्श राज्य की कल्पना मात्र न होकर पूर्णतः व्यावहारिक है। इस ग्रन्थ के माध्यम से गोस्वामी जी ने परस्पर स्नेह–सम्मान के साथ परायणता के माध्यम से न केवल जीवन को समृद्ध–सुखी बनाने में असंख्य–अप्रतिम योगदान दिया है वरन मानस के पात्रों के माध्यम से ढेरों सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में अभूतपूर्व कार्य किया है।[2]"

[2]श्रीविष्णुसहस्रनाम, सानुवाद शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1999, पृष्ठ–143.

आज के सन्दर्भ में हमारे समक्ष विद्यमान विशालतम चुनौतियों में जो अग्रणी हैं उनमें सामाजिक व्यवस्था में समरसता का उत्तरोत्तर पतन प्रमुख है। स्थिति यहाँ तक पहुँच चुकी है कि इक्कीसवीं सदी के 19 वर्ष और भारतीय संविधान लागू होने के 79 वर्ष बाद भी वर्ण–व्यवस्था और रुढ़ियों के कुचक्र को भेदने में सफल होने की अपेक्षा हम उसमें और उलझते जा रहे हैं और अपने वर्तमान को संभालने के संकट से जूझ रहे हैं।

राम कथा का मानव जीवन पर प्रभाव

"बालकाण्ड" में वर्णित प्रयागराज के मुनि–समागम में ऋषि भरद्वाज अपनी जिज्ञासा की शांति हेतु ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ अपने संवाद में भगवान शंकर को भगवान श्री राम का उपासक बताते हुए कहते हैं कि हर कोई अविनाशी भोलेनाथ की उपासना करता है, वहीँ स्वयं भगवान शंकर श्री राम की महिमा का बखान करते हैं

"संतत जपत संभु अविनासी, सिव भगवान ज्ञान गुन रासी।
सोपि राम महिमा मुनिराया, सिव उपदेश कीन्ह करि दाया।

इसके पश्चात्

"सम्भु समय तेहि रामहिं देखा, उपजा हियँ अति हरष विसेषा ।
तिन्ह नृपसुतहिं कीन्ह परनामा, कहि सच्चिदानंद परधामा।।
तथा "जासु कथा कुम्भज ऋषि गाई सोइ मम इष्ट देव रघुबीरा."

के माध्यम से बार–बार शंकर का राम के प्रति सम्मान दिखाना निश्चित ही शैवों के मन से वैष्णवों के प्रति विद्वेष भाव समाप्त करने और दोनो सम्प्रदायों के बीच की खाई को भरने और उनमे परस्पर सौहार्द स्थापित करने के उद्देश्य से किया गया अत्यावश्यक, सार्थक, सफल प्रयास था ।[3]

[3]ऋग्वेदसंहिता (श्रीसायणाचार्य कृत भाष्य एवं भाष्यानुवाद सहित) भाग–5, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2013, पृष्ठ–3892.

International Journal of Research in Economics and Social Sciences (IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 7, July 2016,
ISSN(O): 2249-7382, | Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

यही नहीं बालकांड में माता पार्वती को श्री राम जन्म–प्रसंग की कथा सुनाते हुए भगवान शंकर जन्मोत्सव का आनंद देखने के लिए कागभुशुण्डि के साथ मनुष्य रूप में चोरी से अपने अयोध्या विचरण तथा बाल–लीला देखने की चर्चा करते हैं, जिससे उनके मन में भगवान राम के प्रति आदर परिलक्षित होता है।

और एक कहउँ निज चोरी, सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी।
कागभुशुण्डि संग हम दोऊ, मनुज रूप जानइ नहि कोऊ।
परमानन्द प्रेम सुख फूले, वीथिन्ह फिरहि मगन मन भूले।

विचित्रता यह कि ये प्रेम–सम्मान एकांगी नहीं बल्कि विशुद्ध द्विपक्षी है। इसकी एक अति मनोहारी झलक पुष्प वाटिका में मिलती है जब सीताजी शंकर–प्रिया भवानी से अपने लिए एक सुयोग्य वर की प्रार्थना करती हैं–

"**गयीं भवानी भवन बहोरी, बंदि चरन बोली कर जोरी।**
जय जय गिरिवर राज किशोरी, जय महेश मुख चंद चकोरी।"

और धनुष यज्ञ के समय जब भंजन हेतु श्री राम की सुकुमार काया और शिव–धनुष की विशालता का अनुमान लगाकर मन में किंचित चिंतित–विचलित होती हैं और माँ भवानी और भगवान भोलेनाथ को याद करती हैं

"**मन ही मन मनाव अकुलानी, होहु प्रसन्न महेस भवानी।**
करहु सफल आपनि सेवकाई, करि हितु हरहु चाप गरुआई ।"

"यदि हम थोड़ी और गहराई में उतरें तो पायेंगे शंकर और राम (अर्थात शैव–वैष्णव) समीकरण–एकीकरण मानस का छिटपुट प्रसंग न होकर यत्र–तत्र–सर्वत्र का प्रसंग है। इसका प्रमाण हमें इस तथ्य से मिलता है कि श्री राम–शंकर का परस्पर स्नेह–सम्मान, पूजा–अर्चना बालकांड से प्रारम्भ होकर अयोध्याकांड और लंकाकांड होते हुए उत्तरकांड तक बारहमासी पवित्र सलिला सदृश निरंतर चलती रहती है।[4]"

वनगमन–प्रसंग में भी श्रीराम अपने चौदह–वर्षीय वनवास की यात्रा पर अयोध्या से प्रस्थान करते समय विघ्नहर्ता गणेश और माँ भवानी के साथ भगवान शंकर का ही स्मरण करते हैं

[4]ऋग्वेद पदानां अकारादि वर्णक्रमानुक्रमणिका, संपादक– स्वामी विश्वेश्वरानंद एवं नित्यानंद, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, संस्करण–1908, पृ०–79.

"गणपति गौरि गिरीसु मनाई, चले असीस पाई रघुराई"।

और गंगा जी को पार करने के बाद पुनः शंकर का शीश झ़का कर वनगमन करते हैं

"तब गणपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित वन, गवन कीन्ह रघुनाथ।"

लंका विजय हेतु सेतु बंधन के समय जब परंपरानुसार पूजा की बात आतो है तो भगवान राम कहते हैं

"करिहउँ इहां संभु थापना, मोरे हृदय परम कल्पना।
लिंग थापि विधिवत करि पूजा, सिव समान प्रिय मोहि न दूजा।
सिव द्रोही मम दास कहावा, सो नर मोहि सपनेहुँ नहि पावा।
संकर विमुख भगति चह मोरी, सो नारकी मूढ़ मति थोरी।
संकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास।
सो नर करहिं कल्प भरि, घोर नरक माह बास।"

राम से ऐसा कहलवाकर तुलसी दास जी वैष्णवों को भी शैवों के प्रति वैर–वैमनस्य छोड़कर उन्हें मैत्री भाव हेतु प्रेरित ही नहीं बल्कि विवश करते हैं ।

कितना अद्भुत और सुखद है कि यह क्रम सेतुबंध के साथ यहीं समाप्त न होकर लंका–विजय तक चलता है जब समस्त देवताओं द्वारा की गयी प्रार्थना के क्रम में भगवान शंकर आते हैं और परम प्रेम से दोनों हाथ जोड़कर, कमल–नयन समान नेत्रों में जल भरकर, पुलकित शरीर और गदगद वाणी से त्रिपुरारो शिव विनती करते हुए कहते हैं

"मामभिरक्षय रघुकुल नायक, धृत वर चाप रुचिर कर सायक।
अनुज जानकी सहित निरंतर, बसहु राम नृप मम उर अंतर।"

इसके साथ यह कहकर जाते हैं कि–

"नाथ जबहि कौशल पुरी होइहि तिलक तुम्हार,
कृपासिंधु मैं आउब देखन चरित तुम्हार।"

और अयोध्या आने के बाद जब श्रीराम–राज्याभिषेक होता है तो पुनः शंकर जी का आगमन होता है

"बैनतेय सुनु संभु तहँ आये जहँ रघुबीर,
बिनय करत गद्गद गिरा बोले पुलक सरीर।
जय राम रमा रमनं समनं भवताप भयाकुल पाहि जनम।"

और अंत में दृ "बरनि उमापति रामगुन हरखि गए कैलास।"

यह तो रही पंथ अथवा संप्रदाय–आधारित राष्ट्रीय–एकता में मानस के योगदान की बात।

सामाजिक समरसता

"यदि हम सामाजिक समरसता की दृष्टि से देखें तो वहां भी "रामचरितमानस" हमें प्रतिबिम्ब और पथ दोनों दिखाता है। प्रतिबिम्ब इसलिए कि हम अपने व्यक्तित्व एवं तदनुरूप कार्य व्यवहार व सामाजिक योगदान के वास्तविक रूप को जान सकें, और पथ इसलिए कि जहाँ हम एक समाज के रूप में भटक रहे हैं वहां सन्मार्ग का चयन कर सकें और उस पर चलने का साहस–सामर्थ्य जुटा सकें।[5]"

इसी क्रम में श्रीराम को मना कर वापस ले जाने के लिए के लिए चित्रकूट जाते हुए भरत की भेंट निषादराज से होती है तो इस समरसता और मर्यादा का अद्भुत दृश्य देखने को मिलता है जब निषाद अपना नाम बताता है–

"देखि दूरी ते कहि निज नाम."

(बताने के लिए कि मैं नीची जाति का हूँ), और इस पर भरत की प्रतिक्रिया इस समरसता का प्रमाण देती है जब वह अपना रथ त्याग कर बड़े प्रेम से उसकी ओर जाते हैं

"राम सखा सुनि स्यंदन त्यागा, चले उतरि उमगत अनुरागा।
करत निषाद दंडवत पाई, प्रेमहि भरत लीन्ह उर लाई।
भेंटत भरत ताहि अति प्रीती, लोग सिहाहिं प्रेम कइ रीती।"

[5]हिन्दी साहित्य कोश, भाग–2, संपादक– डॉ० धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण–2011, पृष्ठ–497.

और इसकी अप्रत्याशित पराकाष्ठा तो तब होती है जब चित्रकूट में निषाद नीची जाति का होने के कारण डर व् संकोच वश दूर से प्रणाम करता है और मुनि वशिष्ठ (ब्राह्मण होने के नाते जिनसे अधिक ऊंचा व् प्रतिष्ठित होने की उस समय कल्पना नहीं की जा सकती) निषादराज को अपने बाहुपाश में भर कर मिलते हैं

"प्रेम पुलक केवट कहि नामू कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू,
रामसखा ऋषि बरबस भेंटा जिमि महि लुठत सनेह समेता।"

"मानस" में वर्णित यह सामाजिक सद्भाव यहीं तक अर्थात निषाद (आज के सामाजिक सन्दर्भों में तथाकथित अनुसूचित जाति) तक सीमित नहीं रहता। इसके आगे श्रीरामचरितमानस जनजाति को भी समाज का अभिन्न और सम्मानित अंग बनाता है जब गोस्वामी तुलसीदास जी श्री हनुमान जी के माध्यम से वानरराज सुग्रीव की भेंट भगवान राम से करवाते हैं।

किसी ने वानर को वन में रहने वाला नर कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सुग्रीव और उनकी सेना के सदस्य वानर–भालू ही न होकर जंगल में रहने वाली जातियां रही होंगी जो कि नगर और गांव में रहने वालों से कम 'शिक्षित–सभ्य' मानी जाती रही होंगी (यद्यपि शिक्षा की दृष्टि से हनुमान जी को इस श्रेणी में रखना अनुचित होगा)।

निष्कर्ष

किष्किंधा में राम–लक्ष्मण से भेंट होने पर हनुमान जी अपने राजा सुग्रीव का परिचय देकर उनके साथ मित्रता का निवेदन करते हैं

"नाथ शैल पर कपि पति रहई, तेहि सग नाथ मयत्री कीजै।"

मानस में "किष्किंधाकांड" का प्रसंग रखने की पृष्ठभूमि में गोस्वामी जी के मन में केवल मित्रता मात्र का वर्णन करना नहीं था वरन इसके माध्यम से वह यह बताने की कोशिश कर रहे थे कि राजा (शासक) को किसी बड़े काम की सफलता के लिए (चाहे वह शत्रु–विजय हो अथवा कोई अन्य बड़ा सामाजिक–राष्ट्रव्यापी अभियान), जन– सहभागिता (सबके विकास के लिए सबका साथ) परम आवश्यक है। मानस के उपर्युक्त प्रसंग इस बात की पर्याप्त पुष्टि करते हैं कि समरसता के माध्यम से राष्ट्रीय एकीकरण रामकथाका एक अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा है।

संदर्भ

1"रामचरितमानस" (सटीक)–2–28–2य गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1999ई०।

2. संस्कृत–हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे।

3. श्रीविष्णुसहस्रनाम, सानुवाद शांकर भाष्य सहित, गीताप्रेस गोरखपुर, संस्करण–1999, पृष्ठ–143.

4. ऋग्वेद पदानां अकारादि वर्णक्रमानुक्रमणिका, संपादक– स्वामी विश्वेश्वरानंद एवं नित्यानंद, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, संस्करण–1908, पृ०–348.

5. ऋग्वेदसंहिता (श्रीसायणाचार्य कृत भाष्य एवं भाष्यानुवाद सहित) भाग–5, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2012, पृष्ठ–3892.

6. ऋग्वेदसंहिता (श्रीसायणाचार्यजी कृत भाष्य एवं भाष्यानुवाद सहित) भाग–5, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण–2011, पृष्ठ–4406.

7. ऋग्वेद पदानां अकारादि वर्णक्रमानुक्रमणिका, संपादक– स्वामी विश्वेश्वरानंद एवं नित्यानंद, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, संस्करण–1908, पृ०–79.

8. वैदिक–पदानुक्रम–कोषः, संहिता विभाग, तृतीय खण्ड, संपादक– विश्वबन्धुजी शास्त्री, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशिआरपुर, संस्करण–1956, पृष्ठ–1550य एवं ऋग्वेद पदानां अकारादि वर्णक्रमानुक्रमणिका, संपादक– स्वामी विश्वेश्वरानंद एवं नित्यानंद, निर्णय सागर प्रेस, मुंबई, संस्करण–1908, पृ०–195.

9. हिन्दो साहित्य कोश, भाग–2, संपादक– डॉ० धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, संस्करण–2011, पृष्ठ–497.